१७

हरी बिन्दी

मृदुला गर्ग

आँख खुलते ही आदतन नज़र सबसे पहले कलाई पर बँधी घड़ी पर गई ... सिर्फ़ साढ़े छह बजे थे। उसने फ़ौरन दुबारा कसकर आँखें बन्द कर लीं और इंतज़ार करने लगी कि अब पलंग चरमराएगा और आवाज़ आएगी — उठना नहीं है क्या ? पर जब कुछ देर चुप्पी बनी रही तो आँखें खोलकर देखा, बिस्तर पर वह अकेली है। अरे हाँ, रात ही तो राजन् दिल्ली गया है। याद ही नहीं रहा था। तो अब उठने की कोई जल्दी नहीं है। उसने ढेर सारी हवा गालों में भरकर एक लम्बी साँस छोड़ी और पूरे बिस्तर पर लोट लगा गई। दूसरे सिरे पर जाकर मुँह पर बाँह रखकर लेटी तो कानों में घड़ी की टिक-टिक तीव्रता से बज उठी। वह मुस्कुरा दी। उसे कलाई पर घड़ी बाँधकर सोने की आदत है। रोज़ राजन् चिढ़कर कहता है — यह क्या, सारी रात कान के पास टिक-टिक होती रहती है। इसे उतारो न। उसने मुँह पर से बाँह हटा ली, तकिया खींचकर पेट के नीचे दबा लिया और लम्बे-चौड़े पलंग पर बाँहें फैलाकर औंधी लेट गई। ओह, सुबह देर तक सोने में कितना आनन्द आता है। राजन् होता है तो सुबह छह-साढ़े छह से ही खटर-पटर शुरू हो जाती है। चाय-नाश्ते की तैयारी, दुपहर का खाना साथ में और आठ बजे राजन् दफ़्तर के लिए रुख़सत। न जाने राजन् को यह जल्दी उठने का क्या मर्ज़ है। ख़ैर, आज वह स्वतंत्र है। जो चाहे, करे। उसने शरीर को ढीला छोड़ दिया और दुबारा सोने की तैयारी करने लगी।

फिर जब आँख खुली तो साढ़े आठ बज चुके थे। उसने एक प्याला चाय बनाई और खिड़की का परदा हटाकर बाहर झाँकने लगी। दूर तक धुँध छाई हुई थी। आज ज़रूर बरसात होगी, उसने सोचा। उसे धुँध बहुत भली लगती है। जब मालूम नहीं पड़ता वहाँ कुछ दूर पर क्या है तो अनायास आशा होने लगती है कि कोई अनुपम और मोहक वस्तु होगी। मैं भी ख़ूब हूँ, उसने मुस्कुराकर सोचा, मुझे धुँध में खुलापन लगता है और सूर्य के प्रकाश में घुटन ! चाय पीकर गरम पानी से देर तक नहाया जाए, उसने सोचा और इसी विचार से बाल्टी भरने लगी। फिर सहसा ठण्डे पानी की फुहार ही ऊपर छोड़ ली और एक ग़ज़ल गुनगुना उठी। बड़े तौलिये से ख़ूब रगड़कर बदन पोंछा। आज एक अद्‌भुत स्फूर्ति

और उत्साह का अनुभव हो रहा है। नीले रंग का कुर्ता और चूड़ीदार पाजामा पहना तो नीले रंग की बिन्दी माथे पर लगाने को हाथ बढ़ गया। फिर न जाने क्या सोचकर उसे छोड़ दिया और बड़ी-सी हरी बिन्दी लगा ली। राजन् होता तो कहता — नीले पर हरा ? क्या तुक है ? उसने दर्पण में दिख रही अपनी प्रतिच्छाया को ज़बान निकालकर चिढ़ा दिया, कहा, "तुक की क्या तुक है ?" और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

दराज़ खोली तो नज़र चाँदी की बाली पर पड़ गई। उठाकर कानों में लटका लीं। विवाह के बाद से पहननी छोड़ दी थीं। नक़ली हैं न। और ज़रूरत से ज़्यादा बड़ी, राजन् कहता है। एक पुराना बैग हाथ में ले, झटपट बाहर निकल आई। बरामदे में मुण्डू बैठा आराम से सिगरेट फूँक रहा था, राजन् की। उसे देखते ही हथेली में उसे छिपा बड़ी संजीदगी से बोला, "खाना क्या बनाऊँ ?"

"कुछ नहीं," उसने कहा, "नहीं खाएँगे। तुम्हारी छुट्टी।"

मुण्डू की घबराई सूरत देख वह हँस पड़ी और बोली, "मेरा मतलब, जो तुम्हें अच्छा लगे बना लो। तुम्हें ही खाना है, चाहे खाओ चाहे छुट्टी मनाओ।"

बिना इसकी चिन्ता किये कि ठीक कहाँ जाएगी या क्या करेगी, वह सड़क पर कुछ दूर चलती चली गई। बस इतना जानती है कि आज का दिन यों ही नहीं जाने देगी। कुछ तय करने से पहले वर्षा आरम्भ हो गई। उसने कुछ दूर भागकर टैक्सी को आवाज़ लगाई और भीतर घुसकर सोचने लगी, जब टैक्सी ली है तो कहीं-न-कहीं जाने को कहना ही पड़ेगा।

"जहाँगीर आर्ट गैलरी," उसने जो सबसे पहले मुँह में आया, कह दिया।

गैलरी में किसी आधुनिक चित्रकार की प्रदर्शनी हो रही थी। विशेष कुछ समझ में तो नहीं पर आनन्द अवश्य आया। आज कुछ भी करने में आनन्द आ रहा है। एक चित्र के आगे वह काफ़ी देर तक खड़ी रही। देखा, पूरे 'कैनवेस' पर रंग-बिरंगी रेखाएँ इधर-उधर दौड़ी चली जा रही हैं। अरे, उसने सोचा, यह तो बिल्कुल मेरे कुर्ते की तरह है।

वह ज़ोर से हँस पड़ी, इतनी ज़ोर से कि पास खड़ा एक दढ़ियल उसे घूरने लगा। कहीं यही तो चित्रकार नहीं है ? बेचारा ! ज़रूर चित्र अत्यंत त्रासद रहा होगा।

उसने चेहरे को गम्भीर बनाया और दढ़ियल के पास जाकर विनम्रता से कहा, "सॉरी।" और फ़ौरन बाहर निकल आई। बाहर आकर ख़याल आया, हो सकता है, वह

कलाकार न हो, कोई उद्योगपति हो। दो क़िस्म के इंसान ही दाढ़ी रखने का साहस कर सकते हैं — कलाकार और सामंत। सामंत तो अब रहे नहीं, उनका स्थान उद्योगपतियों ने ले लिया है। तब तो दिन-भर यही सोचता रहेगा, उसने सॉरी क्यों कहा। उसमें भी नफ़े की गुंजाइश ढूँढ़ता रहेगा। वह दूने वेग से हँस दी।

फिर देखा, वर्षा थमी हुई है पर आकाश अब भी काफ़ी गुस्सैल नज़र आ रहा है। पूरा बरसा नहीं, उसने सोचा, और फिर सड़क थाम ली।

सड़क के किनारे एक रेस्तराँ को देखकर याद आया कि काफ़ी ज़ोर से भूख लगी है। भीतर जाकर चटपट आदेश दे दिया, "एक गरमागरम आलू की टिकिया की प्लेट और एक आइसक्रीम, एक साथ।"

"एक साथ ?" बैरे ने आश्चर्य दिखाया।

"हाँ। कोई एतराज़ है ?"

"जी नहीं। लाया।"

उसे ठण्डा और गरम एक साथ खाना बहुत भला लगता है। कहते हैं, दाँत ख़राब हो जाते हैं। कितना चटपट काम हो गया आज। राजन् रहता है तो बढ़िया जगह बैठकर आराम से खाने की सूची देखने के बाद, सोच-विचारकर आदेश दिये जाते हैं। खाकर बाहर निकली तो सोचा, पास किसी सिनेमाघर में पिक्चर देख ली जाए। क़िस्मत से अँग्रेज़ी की एक पुरानी मज़ाकिया पिक्चर लगी मिल गई। 'डैनी के' की। राजन् कहता है — न जाने तुम्हें 'डैनी के' कैसे पसन्द है। मुझे तो उसके बचपने पर हँसी नहीं आती। पर उसे आती है, ख़ूब आती है, और फिर हँसी पर हँसी आती है... कभी-कभी बे-बात आती है, जैसे आज।

पिक्चर के दौरान वह आज और दिनों से भी ज़्यादा ठहाके लगा रही थी। पास बैठे आदमी की सूरत अँधेरे में दिख नहीं रही थी, पर हँसी की आवाज़ ज़रूर सुनाई पड़ रही थी। पता लग रहा था कि हँसने में वह उससे दो क़दम आगे है। अदाकार की एक ख़ास बेचारगी की मुद्रा पर वे दोनों इतनी ज़ोर से हँसे कि उनके हाथ आपस में टकरा गये। सॉरी कहने के इरादे से वे एक-दूसरे की तरफ़ मुड़े, पर माफ़ी माँगने के बजाय एक ठहाका और लगा गये।

उसके बाद हर बार यही हुआ। हँसी आने पर वे अनायास एक-दूसरे को देखते और मिलकर हँसते।

खेल ख़त्म होने पर एक साथ बाहर निकले तो देखा, साढ़े चार बजे ही काफ़ी अँधेरा हो चला है। आकाश यों तना खड़ा है कि अब बरसा, अब बरसा।

"कितना सुहावना दिन है," उसने अपने पड़ोसी से कहा।

"सुहावना ?" उसने कुछ अचरज से कहा, "या बेरंग ?"

"हाँ, कितना सुहावना-सुहावना बेरंग दिन है।"

वह हँस पड़ा, "समझता हूँ। सूरज यहाँ रोज़ निकलता है।"

"पर धुँध कभी-कभी होती है। आठ महीनों में आज पहली बार।"

"और अब मानसून शुरू हो जाएगी ?"

"हाँ, आज ख़ूब बरसेगा," उसने कहा और फिर अनायास, "कॉफ़ी पिएँगे ?"

"ज़रूर।"

हल्की-हल्की फुहार पड़नी शुरू हो गई तो दोनों भागकर सामने वाले रेस्तराँ में जा घुसे। उसने बाल झटक दिए और बोली, "आपका छाता कहाँ है ?"

"छाता ?"

"हाँ, आप लोग हमेशा छाता साथ रखते हैं न ?"

वह ठहाका मारकर हँस पड़ा, "इंगलैंड में," उसने कहा।

कॉफ़ी मँगाकर दोनों सामने, काले पड़ आये, समुद्र को देखते-देखते अपने-अपने ख़यालों में खो गये।

सहसा उसकी आवाज़ सुनकर वह चौंकी, "आप क्या सोच रही हैं, यह जानने के लिए 'पेनी' का ख़र्चा करने को तैयार हूँ।"

"दीजिए," उसने हँसकर कहा।

उसने निहायत संजीदगी से जेब में हाथ डाला और एक पेनी आगे कर दी। उसने उसे हथेली में बन्द कर लिया।

"बतलाना सच-सच होगा।"

"मैं सोच रही थी, यदि समुद्र में कूद पड़ूँ तो कितनी दूर तक अकेली तैर सकूँगी। और आप ? आप क्या सोच रहे थे ? पर पेनी नहीं दूँगी," उसने मुट्ठी कसकर बन्द कर ली, जैसे उसमें किसी आत्मीय का दिया उपहार हो।

"बुरा तो नहीं मानेंगी ?" उसने पूछा।

"नहीं," उसने कह तो दिया पर उसका दिल बैठ गया। बस, अब वही घिसी-पिटी आशिक़ाना बातें शुरू हो जाएँगी।

"मैं सोच रहा था, बारिश बढ़ जाने पर यहाँ से 'वोरली' तक का टैक्सी-भाड़ा कितना लगेगा ?" वह ज़ोर से हँस पड़ी, दुर्भावना से नहीं, हर्ष के अतिरेक से।

"मुझे रास्ते में छोड़ते जाएँगे तो आधा," उसने कहा।

"बहुत ख़ूब," उसने यह भी नहीं पूछा कि वह रहती कहाँ है।

उसे लगा, वह जीवन में पहली बार ऐसे इंसान के साथ बैठी है, जो यह नहीं जानना चाहता कि उसके पति हैं या नहीं, और हैं तो क्या काम करते हैं।

"समुद्र के जल पर गिरती वर्षा की बूँदें कितनी अच्छी लगती हैं," उसने कहा।

"हाँ।"

फिर कुछ देर दोनों चुप रहे।

"प्रशान्त महासागर पर जब जहाज़ जाता है, तो उसके अग्रभाग से चिरता जल चाँदी की तरह चमकने लगता है," अतिथि ने कहा।

"क्यों ?"

"शायद 'फ़ोस फ़ोरस' के कारण। आपने कभी नहीं देखा ?"

"नहीं।"

"मौक़ा मिले तो देखियेगा।"

"आप बहुत घूमे हैं ?" उसने हल्की ईर्ष्या के साथ पूछा।

"बहुत," वह याद करके मुस्कुरा रहा था।

"सबसे अच्छी जगह कौन-सी लगी ?"

"जब जहाँ हुआ," कहकर वह हिचकिचाहट के साथ मुस्कुराया, पता नहीं वह समझे या न समझे। पर वह सहमति-स्वरूप सिर हिलाकर मुस्कुरा दी।

उसने देखा, कॉफ़ी समाप्त हो चली है और बैरा बिल लिये चला आ रहा है। बाहर वर्षा थमने लगी है, धुँध भी छँट रही है। नहीं, धुआँधार नहीं बरसेगा। वह संकेत झूठा निकला। बस, अब धुँध हट जायेगी और वही तेज़ प्रकाश वाला सूर्य निकल आएगा।

बिल आने पर उसने स्वयं उठा लिया, कहा, "न्योता मेरा था।"

अतिथि ने बहस नहीं की। शुक्र है... शुक्र है, उसने सोचा, कहीं आम पुरुष समान पैसे देने की ज़िद करने लगता तो सब कुछ बिखर जाता।

टैक्सी लेकर चले ही थे कि घर आ गया। उतरते-उतरते पैसे निकालने लगी तो उसने रोक दिया, "रहने दीजिए।"

"क्यों?" उसके माथे पर शिकन पड़ गई।

"आज का दिन मेरे लिए काफ़ी कीमती रहा है।"

"कैसे?"

"मैंने आज से पहले किसी को हरी बिन्दी लगाए नहीं देखा," उसने स्निग्ध स्वर में कहा।

वह ज़रा ठिठकी कि टैक्सी चल दी। कुछ दूर जाकर उसकी आँखों से ओझल हो गई।